

तत्समाकर्ण्य योगीन्द्रो धरसेनो गुणोज्ज्वलः। तुष्टस्तौ पाठयामास जैनसिद्धान्तसञ्चयम् ॥२०॥
 पठित्वा च मुनीन्द्रौ तौ गुरोः सेवाविधायिनौ। जातौ सिद्धान्तकर्तारौ जैनधर्मधुरन्धरौ ॥२१॥
 एतैर्यथा मुनीन्द्रैस्तु शास्त्रोद्धारो कृतो भुवि। तथा ह्यन्यैर्महाभव्यैः कार्योसौ धर्मवत्सलैः ॥२२॥
 स श्रीमान्धरसेनामसुगुरुः श्रीजैनसिद्धान्त-सद्वाद्धीदुर्धरपुष्पदन्तसुमुनिः श्रीभूतपूर्वो बलिः।
 एते सन्मुनयो जगत्त्रयहिताः स्वर्गामरैरर्चिताः कुर्युर्मै जिनधर्मकर्मणि मतिः स्वर्गापवर्गप्रदे ॥२३॥

इति महामुनीनामाख्यानं समाप्तम्।

९७. सुव्रतमुनेराख्यानम्

श्रीजिनं सर्वदेवेन्द्रसमर्चितपदद्वयम्। नत्वा सुव्रतयोगीन्द्रवृत्तं वक्ष्ये हतामयम् ॥१॥
 सुराष्ट्रविषये रम्ये द्वारावत्यां महापुरि। हरिवंशे समुत्पन्नः कृष्णनामान्तिमो हरिः ॥२॥
 सत्यभामादिसद्राज्ञीसमूहे प्राणवल्लभः। त्रिखण्डेशो महीनाथ-सहस्रैः परिसेवितः ॥३॥
 एकदासौ महाराजः श्रीमन्नेमिजिनेशिनः। समवादिसृतिं गच्छन्वन्दनार्थं सुखप्रदाम् ॥४॥

दो देवियाँ सुन्दर वेष में उन्हें दीख पड़ी। गुरु के पास आकर तब उन्होंने अपना सब हाल कहा। धरसेनाचार्य उनका वृत्तान्त सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। आचार्य ने उन्हें सब तरह योग्य पा फिर खूब शास्त्राभ्यास कराया। आगे चलकर यही दो मुनिराज गुरुसेवा के प्रसाद से जैनधर्म के धुरन्धर विद्वान् बनकर सिद्धान्त के उद्धारकर्ता हुए। जिस प्रकार उन मुनियों ने शास्त्रों का उद्धार किया उसी प्रकार अन्य धर्मप्रेमियों को भी शास्त्रोद्धार या शास्त्रप्रचार करना उचित है ॥१३-२२॥

श्रीमान् धरसेनाचार्य और जैनसिद्धान्त के समुद्र श्री पुष्पदन्त और भूतबलि आचार्य मेरी बुद्धि को स्वर्ग-मोक्ष का सुख देने वाले पवित्र जैनधर्म में लगावें; जो जीव मात्र का हित करने वाले और देवों द्वारा पूजा किए जाते हैं ॥२३॥

९७. सुव्रत मुनिराज की कथा

देवों द्वारा जिनके पाँव पूजे जाते हैं, उन जिन भगवान् को नमस्कार कर सुव्रत मुनिराज की कथा लिखी जाती है ॥१॥

सौराष्ट्र देश की सुन्दर नगरी द्वारका में अन्तिम नारायण श्रीकृष्ण का जन्म हुआ। श्रीकृष्ण की कई स्त्रियाँ थीं, पर उन सबमें सत्यभामा बड़ी भाग्यवती थी। श्रीकृष्ण का सबसे अधिक प्रेम उसी पर था। श्रीकृष्ण अर्धचक्री थे, तीन खण्ड के मालिक थे। हजारों राजा-महाराजा उनकी सेवा में सदा उपस्थित रहा करते थे ॥२-३॥

एक दिन श्रीकृष्ण नेमिनाथ भगवान् के दर्शनार्थ समवसरण में जा रहे थे। रास्ते में इन्होंने तपस्वी श्रीसुव्रत मुनिराज को सरोग दशा में देखा। सारा शरीर उनका रोग से कष्ट पा रहा था। उनकी यह दशा श्रीकृष्ण से न देखी गई धर्म प्रेम से उनका हृदय अस्थिर हो गया। उन्होंने उसी समय एक जीवक नाम

मार्गे सुव्रतनामानं मुनीन्द्रं सुतपोनिधिम्। व्याधिक्षीणाङ्गमालोक्य सुधीर्धर्मानुरागतः ॥५॥
जीवकाख्यमहावैद्य-प्रोक्तशुद्धौषधान्वितान्। भक्त्या सर्वगृहेषूच्चैः कारयामास मोदकान् ॥६॥
तन्मोदकशुभाहारैः सर्वत्र स मुनीश्वरः। संजातो विगतव्याधिश्चारुचारित्रमण्डितः ॥७॥
तेन श्रीवासुदेवेन लसदौषधिदानतः। श्रीमत्तीर्थकरस्योच्चैः पूतं गोत्रमुपार्जितम् ॥८॥
महापात्रप्रदानेन देहिनां शर्मकारिणा। सतां सद्भक्तियुक्तानां किं न जायेत भूतले ॥९॥
तथैकदा मुनि सोपि निर्व्याधिभूभुजा मुदा। दृष्टः पृष्टो मुने स्वामित्रस्ति देहे समाधिता ॥१०॥
तच्छ्रुत्वा स मुनिः प्राह निस्पृहः स्वशरीरके। कायोशुचिर्भवेद्भूष क्षणान्नानाप्रकारभाक् ॥११॥
तत्समाकर्ण्य चक्रेशो मुनेर्वाक्यं सुनिर्मलम्। नत्वा तं त्रिजगत्पूज्यं चक्रे चित्ते प्रशंसनम् ॥१२॥
जीवाख्यः स वैद्योपि तन्निशम्य स्वमानसे। अहो मे मुनिनानेन गुणो नैव प्रवर्णितः ॥१३॥
निन्दां चेति चकारासौ मृत्वार्तध्यानयोगतः। नर्मदा सुनदीतीरे महान्मर्कटकोभवत् ॥१४॥
मूढप्राणी न जानाति मुनीनां वृत्तलक्षणम्। कृत्वा निन्दां जगद्वन्द्यं स्वयं याति कुयोनिताम् ॥१५॥

के प्रसिद्ध वैद्य को बुलाया और मुनि को दिखलाकर औषधि के लिए पूछा। वैद्य के कहे अनुसार सब श्रावकों के घरों में उन्होंने औषधि-मिश्रित लड्डूओं के बनवाने की सूचना करवा दी। थोड़े ही दिनों में इस व्यवस्था से मुनि को आराम हो गया, सारा शरीर फिर पहले सा सुन्दर हो गया। इस औषधिदान के प्रभाव से श्रीकृष्ण के तीर्थकर प्रकृति का बन्ध हुआ। सच है-सुख के कारण सुपात्रदान से संसार में सत्पुरुषों को सभी कुछ प्राप्त होता है ॥४-८॥

निरोग अवस्था में सुव्रत मुनिराज को एक दिन देखकर श्रीकृष्ण बड़े खुश हुए। इसलिए कि उन्हें अपने काम में सफलता प्राप्त हुई। उनसे उन्होंने पूछा-भगवान्, अब अच्छे तो हैं? उत्तर में मुनिराज ने कहा-राजन्, शरीर स्वभाव से अपवित्र, नाश होने वाला और क्षण-क्षण में अनेक अवस्थाओं को बदलने वाला है, इसमें अच्छा और बुरापन क्या है? पदार्थों का जैसा परिवर्तन स्वभाव है उसी प्रकार यह कभी निरोग और कभी सारोग हो जाया करता है। मुझे इसके रोगी होने में न खेद है और न निरोग होने से हर्ष! मुझे तो अपने आत्मा से काम, जिसे कि मैं प्राप्त करने में लगा हुआ हूँ और जो मेरा परम कर्तव्य है। सुव्रत योगिराज की शरीर से इस प्रकार निस्पृहता देखकर श्रीकृष्ण को बड़ा आनन्द हुआ। उन्होंने मुनि को नमस्कार कर उनकी बड़ी प्रशंसा की ॥९-१२॥

पर जब मुनि की यह निस्पृहता जीवक वैद्य के कानों में पहुँची तो उन्हें इस बात का बड़ा दुःख हुआ, बल्कि मुनि पर उन्हें अत्यन्त घृणा हुई कि मुनि का मैंने इतना उपकार किया तब भी उन्होंने मेरे सम्बन्ध में तारीफ का एक शब्द भी न कहा! इससे उन्होंने मुनि को बड़ा कृतघ्न समझ उनकी बहुत निन्दा की-बुराई की। इस मुनि निन्दा से उन्हें बहुत पाप का बन्ध हुआ। अन्त में जब उनकी मृत्यु हुई तब वे इस पाप के फल से नर्मदा के किनारे पर एक बन्दर हुए। सच है-अज्ञानियों को साधुओं के अचार-विचार, व्रत-नियमादि का कुछ ज्ञान तो होता नहीं है। व्यर्थ उनकी निन्दा-बुराई कर वे पापकर्म बाँध लेते हैं। इससे उन्हें दुःख उठाना पड़ता है ॥१३-१५॥

एकदा वानरः सोपि तत्र वृक्षतले मुनिम्। पर्यकस्थं पतच्छाखाभिन्नोरस्कं सुनिश्चलम् ॥१६॥
 समालोक्य स्वपुण्येन भूत्वा जातिस्मरो द्रुतम्। क्रोधभावं परित्यज्य भूरिशाखामृगैः सह ॥१७॥
 अन्यशाखाप्रवल्लीभिस्तां समाकृष्य यत्नतः। शाखां दूरे विधायोच्चैः पूर्वसंस्कारतो मुदा ॥१८॥
 महौषधं समानीय व्रणे तस्य महामुनेः। ददौ धर्मानुरागेण सारपुण्यं गृहीतवान् ॥१९॥
 जन्म जन्म यदभ्यस्तं प्राणिना शर्मकारणम्। तेनाभ्यासेन तेनोच्चैस्तदेव क्रियते पुनः ॥२०॥
 ततस्तेन मुनीन्द्रेण स्वावधिज्ञानचक्षुषा। प्रोक्त्वा तत्पूर्ववृत्तान्तं शीघ्रं सम्बोधितो हि सः ॥२१॥
 तदासौ मर्कटो धीमान्मुनेर्वाक्यप्रसादतः। श्रुत्वा धर्मं जिनेन्द्रोक्तं स्वर्गमोक्षसुखप्रदम् ॥२२॥
 सम्यक्त्वाणुव्रतान्युच्चैर्गृहीत्वा भूरिभक्तितः। प्रतिपाल्य सुधीः सप्तदिनैः संन्यासपूर्वकम् ॥२३॥
 मृत्वा सौधर्मकल्पे च देवो जातो महर्द्धिकः। जैनधर्मरतो जन्तुः किं न प्राप्नोति सत्सुखम् ॥२४॥
 मर्कटोपि सुरो जातो जैनधर्मप्रसादतः। तस्माद्धर्माद् गुरोश्चापि किं परं शर्मकारणम् ॥२५॥

एक दिन की बात है कि यह जीवक वैद्य का जीव बन्दर जिस वृक्ष पर बैठा हुआ था, उससे नीचे यही सुव्रत मुनिराज ध्यान कर रहे थे। इस समय उस वृक्ष की एक टहनी टूट कर मुनि पर गिरी। उसकी तीखी नोंक जाकर मुनि के पेट में घुस गई पेट का कुछ हिस्सा चिरकर उससे खून बहने लगा। मुनि पर जैसे ही उस बन्दर की नजर पड़ी उसे जातिस्मरण हो गया। वह पूर्व जन्म की शत्रुता भूलकर उसी समय दौड़ा और थोड़ी ही देर में बहुत से बन्दरों को बुला लाया। उन सबने मिलकर उस डाली को बड़ी सावधानी से खींचकर निकाल लिया और वैद्य के जीव ने पूर्व जन्म के संस्कार से जंगल से जड़ी-बूटी लाकर उसका रस उन मुनि के घाव पर निचोड़ दिया। उससे मुनि को शान्ति मिली। उस बन्दर ने भी उस धर्मप्रेम से बहुत पुण्यबंध किया। सच है, पूर्व जन्मों में जैसा अभ्यास किया जाता है, जैसा पूर्व जन्म का संस्कार होता है दूसरे जन्मों में भी उसका संस्कार बना रहता है और प्रायः जीव वैसा ही कार्य करने लगता है। बन्दर में-एक पशु में इस प्रकार दयाशीलता देखकर मुनिराज ने अवधिज्ञान द्वारा तो उन्हें वैद्य के जीव के जन्म का सब हाल ज्ञात हो गया। उन्होंने तब उसे भव्य समझकर उसके पूर्वजन्म की सब कथा उसे सुनाई और धर्म का उपदेश किया। मुनि की कृपा से धर्म का पवित्र उपदेश सुनकर धर्म पर उसकी बड़ी श्रद्धा हो गई उसने भक्ति से सम्यक्त्व-व्रत पूर्वक अणुव्रतों को ग्रहण किया। उन्हें उसने बड़ी अच्छी तरह पाला भी। अन्त में वह सात दिन का संन्यास ले मरा। इस धर्म के प्रभाव से वह सौधर्म स्वर्ग में जाकर देव हुआ। सच है, जैनधर्म से प्रेम करने वालों को क्या प्राप्त नहीं होता। देखिए, यह धर्म का ही तो प्रभाव था जिससे कि एक बन्दर-पशु देव हो गया इसलिए धर्म या गुरु से बढ़कर संसार में कोई सुख का कारण नहीं है ॥१६-२५॥

स जयतु जिनधर्मो यत्प्रसादाज्जनोयं भवति सुरनरेन्द्रश्रीशिवश्रीपतिश्च ।
तदिह विदिततत्त्वैः श्रीजिनेन्द्रोक्तधर्मे परमपदसुखाप्त्यै सारयत्नो विधेयः ॥२६॥
इति कथाकोशे श्रीसुव्रतमुनेराख्यानं समाप्तम् ।

१८. हरिषेणख्यानम्

नत्वा श्रीमज्जिनं भक्त्या केवलज्ञानलोचनम् । कथ्यते हरिषेणस्य कथाशयवशाश्रिता ॥१॥
अङ्गदेशे सुविख्याते कांपिल्यनगरे वरे । राजा सिंहध्वजस्तस्य राज्ञी वप्रा गुणोज्ज्वला ॥२॥
तस्याः श्रीहरिषेणख्योभवत्पुत्रो विचक्षणः । भटाग्रणीः सतां मान्यो दाता भोक्ता सुलक्षणः ॥३॥
सा वप्रा श्राविका श्रीमज्जिनपादाब्जषट्पदी । नन्दीश्वरमहापूजां कारयत्येव भक्तितः ॥४॥
तथा प्रभोर्द्वितीया च राज्ञी लक्ष्मीमती प्रिया । सैकदा भूपतिं प्राह कुदृष्टिः स्वमदोद्धता ॥५॥
भो प्रभो पत्तने पूर्वं मदीयो ब्रह्मणो रथः । भ्रमत्वद्य तदाकर्ण्य राज्ञा प्रोक्तं भवत्विति ॥६॥
तच्छ्रुत्वा सा सती वप्रा राज्ञी सद्धर्मवत्सला । पूर्वं मे रथयात्रायां जातायां दत्तसम्पदि ॥७॥
भोजनादौ प्रवृत्तिर्मे प्रतिज्ञामिति मानसे । करोति स्म सतां नित्यं शरणं धर्म एव हि ॥८॥

वह जैनधर्म जय लाभ करे, संसार में निरन्तर चमकता रहे, जिसके प्रसाद से एक तुच्छ प्राणी भी देव, विद्याधर, चक्रवर्ती आदि महापुरुषों की सम्पत्ति लाभ कर-उसका सुख भोगकर अन्त में मोक्षश्री का अनन्त, अविनाशी सुख प्राप्त करता है। इसलिए आत्महित चाहने वाले बुद्धिमानों को उचित है, उनका कर्तव्य है कि वे मोक्षसुख के लिए परम पवित्र जैनधर्म के प्राप्त करने का और प्राप्त कर उसके पालने का सदा यत्न करें ॥२६॥

१८. हरिषेण चक्रवर्ती की कथा

केवलज्ञान जिनका नेत्र है ऐसे जिन भगवान् को नमस्कार कर हरिषेण चक्रवर्ती की कथा लिखी जाती है ॥१॥

अंगदेश के सुप्रसिद्ध कांपिल्य नगर के राजा सिंहध्वज थे। इनकी रानी का नाम प्रिया था। कथानायक हरिषेण इन्हीं का पुत्र था। हरिषेण बुद्धिमान् था, शूरवीर था, सुन्दर था, दानी था और बड़ा तेजस्वी था। सब उसका बड़ा मान-आदर करते थे ॥२-३॥

हरिषेण की माता धर्मात्मा थी। भगवान् पर उसकी अचल भक्ति थी। यही कारण था कि वह अठाई के पर्व में सदा जिन भगवान् का रथ निकलवाया करती और उत्सव मनाती। सिंहध्वज की दूसरी रानी लक्ष्मीमती को जैनधर्म पर विश्वास न था। वह सदा उसकी निन्दा करती थी। एक बार उसने अपने स्वामी से कहा-आज पहले मेरा भगवान् का रथ शहर में घूमे ऐसी आप आज्ञा दीजिए, सिंहध्वज ने इसका परिणाम क्या होगा, इस पर कुछ विचार न कर लक्ष्मीमती का कहा मान लिया। पर जब धर्मवत्सल वप्रा रानी को इस बात की खबर मिली तो उसे बड़ा दुःख हुआ। उसने उसी समय प्रतिज्ञा की कि मैं खाना-पीना तभी करूँगी जब कि मेरा रथ पहले निकलेगा। सच है-सत्पुरुषों को धर्म ही शरण होता है, उनकी धर्म तक ही दौड़ होती है ॥४-८॥